International Journal of Applied Research 2017; 3(10): 362-365

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(10): 362-365
www.allresearchjournal.com
Received: 12-08-2017
Accepted: 15-09-2017

सुमित कुमार
इतिहास विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
सुमित कुमार
इतिहास विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय दरभंगा, बिहार, भारत

गुरूकुल एवं आर्यसमाज की अन्य शिक्षण संस्थाएँ

सुमित कुमार

प्रस्तावना
मनुष्य में मनुष्यता उत्पन्न करने का मुख्य साधन शिक्षा है। प्राचीन काल से ही मानव जाती अपने संतानों को शिक्षित करने के लिए व्यक्तिगत और संस्थागत रूप से प्रयत्नशील रही है भारत मं शिक्षा का विकास सदा उच्च शिखर पर रहा है। यहाँ की गुरूकुल शिक्षा सभी पक्षों को लेकर छात्रों के विकास के लिए तत्पर रहे हैं। वेदों में आचार्य द्वारा उपनयन के माध्यम से छात्रों को गुरूकुल में प्रवेश कराने एवं शिक्षा देने का विवरण मिलता है। गुरूकुल ऐसी शिक्षण संस्थाएँ हैं जहाँ छात्र गुरू के साथ रहते हुए शिक्षा ग्रहण करते हैं। शिक्षक और छात्र के बीच पिता–पुत्र जैसा सम्बन्ध रहता है। गुरूकुल में छात्र आवासीय जीवन व्यतीत करते हैं। गुरू का आश्रम ही उनका निवास स्थान होता है। गुरू ही उनके रहने भोजन आदि का भी पूर्ण प्रबन्ध करते हैं। छात्रों को ब्रह्मचर्य पूर्वक शिक्षा ग्रहण करनी होती है।

गुरूकुलीय शिक्षा के उद्देश्य
गुरूकुल शिक्षा का उद्देश्य बालकों का सर्वांगीण विकास करना है। यहाँ छात्रों को केवल सैद्धान्तिक ज्ञान ही नहीं अपितु क्रियात्मक ज्ञान दिया जाता है। जिससे छात्र शिक्षित होने के साथ ही व्यवसायिक रूप से कुशल भी हो। [1]

गुरूकुलीय पाठ्यचर्या
गुरूकुल की पाठ्यचर्या अत्यत व्यापक थी। इसमें वेद, वेदांग, उपांग, उपवेद, ब्राह्मण, उपनिशद के साथ ही शिल्पकला, संगीत, युद्ध–नीति, राजनीति, प्रबन्धन आदि की शिक्षा दी जाती थी। छात्रों को भाषा का ज्ञान प्रारम्भिक स्तर से ही दिया जाता था। छात्रों को अपने रूचि के अनुसार शिक्षा की व्यवस्था होती थी। [2]

अध्ययन काल
गुरूकुल में प्रवेश की आयु 08 वर्ष से लेकर 12 वर्ष तक होती थी। शिक्षा पूर्ण करने पर समावर्त्तन संस्कार किया जाता था। यह 25 वर्ष, 36 वर्ष और 48 वर्ष पर होता था। छात्र अपने इच्छा अनुसार समय का चयन कर सकते थे। आधुनिक भारत में गुरूकुलीय परम्परा को स्थापित करने का श्रेय आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती को जाता है। उन्होंने अपने ग्रन्थों में गुरूकुलीय शिक्षा की रूप रेखा प्रस्तुत की। इसके साथ ही उन्होंने इसे क्रियात्मक रूप देने के लिए वैदिक पाठशालाओं की स्थापना की। स्वामी जी के बाद आर्यसमाज में गुरूकुलीय शिक्षा को आगे बढ़ाने में महात्मा मुंशीराम का योगदान सराहनीय रहा। उन्होंने गुरूकुल कांगड़ी की स्थापना कर इसकी परम्परा आरम्भ की। इसके पश्चात् आर्यसमाज द्वारा गुरूकुल को आगे बढ़ाया गया और अनेक गुरूकुल खोले गये। [3]

आर्यसमाजों के द्वारा समय–समय पर वैदिक धर्म के प्रचारार्थ उपदेशक महाविद्यालय की स्थापना की गई। कई जगह कन्या पाठशालाएँ एवं सामान्य विद्यालय की स्थापना की गई। कई जगह कन्या पाठशालाएँ एवं सामान्य विद्यालय की भी स्थापना की गई। इस तरह आर्यसमाज द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्तिकारी कदम दिखाई देने लगे। आज सम्पूर्ण भारत को गुरूकुल D. A. V. और अन्य विद्यालयों का विशाल समूह भारतीय शिक्षा व्यवस्था में अपना योगदान दे रहा है।

गुरूकुल का आन्दोलन सन् 1897 में प्रारंभ हुआ। नवम्बर 1898 में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने महात्मा मुंशीरामजी के प्रस्ताव पर गुरूकुल खोलने का निश्चय किया। इस संस्था को प्रारंभ करने के लिए 30 हजार रू0 एकत्र करने का दायित्व महात्मा जी ने लिया। सभा ने जब कहा कि बिना इतना धन इकट्ठा किये गुरूकुल खुल नही सकता, तो मुंशीराम जी ने प्रतिज्ञा की कि ''मैं इतना धन एकत्र

किये बिना अपने घर पैर नहीं रखूँगा।'' आठ मास के भीतर महात्मा जी ने यह राशि इकट्ठी कर ली। यह उनकी अपूर्व सफलता थी। [4]

गुरूकुल काँगड़ी की स्थापना और प्रारंभिक वर्ष

26 नवम्बर, 1898 के दिन पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा यह प्रस्ताव स्वीकृत कर लिया गया था कि गुरूकुल पद्धति के एक शिक्षणालय की स्थापना की जाए, और 8 अप्रैल 1900 तक लाला मुंशीराम ने गुरूकुल के लिए 40,000 के लगभग रूपये भी एकत्र कर लिये थे। इस दशा में अब गुरूकुल की स्थापना में कोई बाधा नहीं रह गई थी। प्रश्न केवल यह था कि गुरूकुल कहाँ स्थापित किया जाए, कौन सा स्थान उसके लिए उपयुक्त होगा। [5]

26 दिसम्बर 1900 के दिन आर्य प्रतिनिधि सभा के अधिवेशन में गुरूकुल के नियम स्वीकृत किये। इस प्रकार आर्य समाज के जीवन में एक नये युग का प्रारंभ हुआ। [6]

मुंशी अमनसिंह ने अपनी जमींदारी का काँगड़ी गाँव (उसकी 1400 बीघा के लगभग भूमि के साथ) गुरूकुल के लिए अर्पित कर देने का संकल्प कर लिया था। अपने शुभ संकल्प की सूचना उन्होंने नजीबाबाद के आर्यसमाज की मार्फत पंजाब आये प्रतिनिधि सभा के पास भेज दी। 22 अक्टूबर, 1901 को सभा में मुंशी अमनसिंह के दान को सधन्यवाद स्वीकार कर लिया, और यह निश्चय किया कि इस भूमि में मकान आदि बनाकर आगामी होली की छुटिटयाँ (21–24 मार्च, 1902) में वहाँ गुरूकुल का उद्घाटनोत्सव किया जाए। [7]

गुजरावाला से रेल के रिजर्व डिब्बे में सब ब्रह्मचारी मुंशीरामजी के साथ 2 मार्च, 1902 (फाल्गून बदी 10, संवत् 1958) को मध्याह्न के बाद हरिद्वार के स्टेशन पहुँचे। भण्डारी शालिग्रामजी लाला मुंशीराम के परम सहायक व अनुरक्त साथी थे। [8]

जंगल को साफ कर जहाँ गुरूकुल के लिए झोपड़िया बनायी गई थी, वहाँ तक पहुँचने के लिए कोई सड़क या मार्ग नहीं था। पगडण्डी का रास्ता भूल जाने के कारण वहाँ जाने में बहुत कठिनाई हुई। [9]

2 मार्च 1902 को काँगड़ी में गुरूकुल की स्थापना हो गई थी। [10] गुरूकुल काँगड़ी के इतिहास में सन् 1906 से 1910 के काल को क्रान्ति या संक्रान्ति का युग कहा जा सकता है। इस काल में गुरूकुल विद्यालय था महाविद्यालय इन दो भागों में विभक्त हो गया। [11]

महात्माजी इसके मुकाबले में एक ऐसी शिक्षा पद्धति को जारी करना चाहते थे, जो सच्चे अर्थो में राष्ट्रीय हो, जिसमें भारतीय संस्कृति, आर्य साहित्य और संस्कृत को समुचित स्थान प्राप्त हो और जिससे इस देश के बालकों में अपने धर्म, संस्कृति तथा देश के प्रति आस्था व कर्तव्यपालन की भावना का विकास हो। इस दिशा में उन्होंने जो प्रयत्न किया, उसके परिणामस्वरूप गुरूकुल ने केवल 15 वर्ष के लगभग समय में एक स्वतन्त्र राष्ट्रीय विश्वविद्यालय का रूप प्राप्त कर लिया। [12]

विकसित होकर गुरूकुल ने जो रूप प्राप्त कर लिया था, वह एक ऐसी शिक्षण संस्था का था, जिसमें प्राचीन और आधुनिक दोनों प्रकार की विद्याओं तथा ज्ञान–विज्ञान की पढ़ाई की समुचित व समुत्तलित व्यवस्था थी। गुरूकुल की अधिकारी परीक्षा के लिए निम्नलिखित विषय नियम थे–संस्कृत साहित्य, संस्कृत व्याकरण, धर्मशिक्षा, आर्यभाषा (हिन्दी), गणित अंग्रेजी, इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, नागरिकशास्त्र, विज्ञान (रसायन और भौतिकी) और आलेख। धर्मशिक्षा में मनुस्मृति, सत्यार्थप्रकाश तथा वेदशास्त्रों के कतिपय सन्दर्भ पढ़ाये जाते थे। संस्कृत व्याकरण में अष्टाध्यायी, सिद्धांत कौमुदी या काशिका और महाभाष्य के नवाहिन् भाग को रखा गया था। हिन्दी का स्तर बहुत ऊँचा था। [13]

अन्य आर्य शिक्षण–संस्थाएँ–आर्यसमाज द्वारा अनेक इण्डस्ट्रियल स्कूल, पॉलिटेक्निक, आयुर्वेदिक कॉलेज, मेडिकल कॉलेज, टैक्निकल इंस्टिट्यूट, शिल्प विद्यालय, औद्योगिक शिक्षा–संस्थान, मल्टीपर्पज स्कूल, ललितकला विद्यालय, कन्या व्यायाम महाविद्यालय महिला शिल्पकला केन्द्र, कृषि विद्यालय और हस्तकला प्रशिक्षण केन्द्र आदि शिक्षण–संस्थाएँ भी स्थापित हैं, जिनमें छात्रों और छात्राओं को किसी विशेष शिल्प, उद्योग व कला में प्रशिक्षित होने का अवसर प्राप्त होता है। आर्यसमाज की ओर से अनेक दीक्षा महाविद्यालयों (ट्रेनिंग कॉलेजों) का भी संचालन किया जा रहा है।

विदेशों में आर्य शिक्षण–संस्थाएँ

आर्यसमाज द्वारा केवल भारत में ही शिक्षण संस्थाओं की स्थापना नहीं की गई है, अपितु मॉरीशस, सुरीनाम, सिंगापुर, संयुक्त राज्य अमेरिका, ग्रेट ब्रिटेन, फिजी, वर्मा, केन्या, तंजानिया, गायना, ट्रिनीडाड, दक्षिणी अफ्रीका, युगाण्डा, मोजाम्बीक आदि कितने ही विदेशी राज्यों में भी आर्यसमाज ने आर्य पाठशालाओं, विद्यालयों या कॉलेजों को स्थापित किया। विदेशों में आर्यसमाज की शिक्षण–संस्थाओं की संख्या एक सौ से भी अधिक है। भारतीय मूल के जो लोग अच्छी बड़ी संख्या में विदेशों में बसे हुए है, उनमें भारत के परम्परागत धर्मो व सम्प्रदायों के प्रति आस्था विद्यमान है, और उन्हें अपनी भाषा तथा संस्कृति से भी प्रेम है। इसलिए वहाँ वैदिक धर्म का भी प्रचार है, और बहुत से आर्यसमाज भी स्थापित है। भारत के समान विदेशों में भी आर्यसमाजों ने शिक्षण–संस्थाओं की स्थापना कर विशेष ध्यान दिया है। इनमें आर्यभाषा (हिन्दी) तथा वैदिक धर्म के मूल तत्त्वों की शिक्षा की विशेष रूप से व्यवस्था की जाती है। कतिपय शिक्षणालयों में शिक्षा का माध्यम भी हिन्दी भाषा है। वैदिक धर्म के अनुसार धर्मशिक्षा की व्यवस्था तो इन सभी आर्य शिक्षण–संस्थाओं में है, जिसके कारण विदेशी व विधर्मी वातावरण में रहते हुए भी आर्य बालक–बालिकाओं को अपनी सांस्कृतिक परम्परा से परिचित होने का अवसर प्राप्त हो जाता है। विदेशों में चिरकाल से बसे हुए भारतीय मूल के लोग जो अपने धर्म तथा संस्कृति से विमुख नहीं हुए है, उसका बहुत कुछ श्रेय आर्यसमाज द्वारा स्थापित शिक्षणालयों को ही है। इन आर्य शिक्षण–संस्थाओं में भारतीय मूल के छात्रों के अतिरिक्त अन्य छात्रा भी शिक्षा प्राप्त करते है, और इस प्रकार अफ्रीका, मारीशस, फिजी आदि के मूल व स्थानीय निवासियों को भी वैदिक धर्म के सम्पर्क में आने का अवसर मिल जाता है। [14]

शिक्षा के क्षेत्र में आर्यसमाज का कार्यकलाप वस्तुतः अत्यन्त महत्त्व का है। ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रचलित की गई शिक्षा पद्धति के अनुसार शिक्षा प्राप्त करने पर भी भारत के नव शिक्षित लोगों में अपने धर्म व संस्कृति के प्रति जो आस्था कायम रह सकी है, उसका प्रधान श्रेय आर्यसमाज द्वारा स्थापित शिक्षण–संस्थाओं को ही दिया जाना चाहिये। जिन उद्देश्यों को सम्मुख रखकर क्रिश्चियन मिशनरियों ने इस देश में स्कूल खोलने शुरू किये थे और ब्रिटिश सरकार ने जिन प्रयोजनों से अपनी शिक्षा पद्धति का निर्माण किया था, वे जो पूरे नहीं हो सके, उसका कारण आर्यसमाज द्वारा स्थापित वे शिक्षण–संस्थाएँ थी, जिनमें आधुनिक ज्ञान–विज्ञान की शिक्षा वैदिक धर्म तथा भारतीय संस्कृति के वातावरण में दी जाती थी और जिनमें पढ़कर विद्यार्थी वे सब लाभ प्राप्त कर लेते थे, जो क्रिश्चियन स्कूलों तथा सरकारी शिक्षणालयों के विद्यार्थियों को प्राप्त हो सके।

बाल मंदिर–छोटे बच्चों की शिक्षा पर आर्यसमाज द्वारा विशेष ध्यान दिया गया है। जो संस्कार छोटी आयु में बच्चों पर पड़ जाते है, वे देर तक कायम रहते है और उनसे भावी जीवन बहुत प्रभावित होता है। इसी तथ्य को ध्यान में रख कर आर्यसमाजों तथा सम्पन्न आर्य नर–नारियों द्वारा दयानन्द बाल–मंदिर, आर्य बाल निकेतन, आर्य पब्लिक स्कूल, शिशु मंदिर, वैदिक नर्सरी स्कूल, मॉडल स्कूल आदि नामों से बहुत सी शिक्षण–संस्थाएँ स्थापित की गई है। गत वर्षो में इन संस्थाओं की संख्या में बहुत

वृद्धि हुई है। देश में शिक्षा के विस्तार और प्रारंभिक शिक्षा को निःशुल्क कर दिये जाने के कारण सरकारी स्कूलों में बच्चों की संख्या बहुत बढ़ गई है। और अत्यन्त हीन स्थिति के परिवारों के बच्चे भी प्रविष्ट होने का अवसर प्राप्त कर लेते है। इन बच्चों का रहन–सहन, बोल–चाल एवं आदते प्रायः ऐसी होती है, कि सम्पन्न व मध्य वर्ग के परिवारों के लोग अपनी संतान को उनके साथ पढ़ाना पसंद नहीं करते। वे चाहते है, कि उनके बच्चे साफ–सुथरे व सुसंस्कृत वातावरण में शिक्षा प्राप्त करें। इसीलिए आर्यसमाज ने ऐसे शिक्षणालय भी स्थापित किये हैं, जिनमें प्रायः उच्च व मध्य वर्गो के बच्चे शिक्षा प्राप्त करते है। पढ़ाई के साथ–साथ इनमें बच्चों को अच्छी–अच्छी बाते भी बतायी जाती है, प्रार्थना के मंत्र याद कराये जाते है। धर्मप्रेम और देशभक्ति की भावना का उनमें संचार किया जाता है और यह प्रयत्न किया जाता है कि बड़े हो कर बच्चे अच्छे नागरिक बन सके। [15]

आर्यसमाज की ओर से भी अनेक ऐसे बाल मंदिर, नर्सरी स्कूल व मॉडल स्कूल कायम किये जाने लगे है, जिनमें शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी भाषा पर बहुत जोर दिया जाता है, और जिनका वातावरण पर्याप्त रूप से सुसंस्कृत व अनुशासित होती है। पर आर्थिक लाभ की दृष्टि से बिजनेस के तौर पर स्थापित किये गये पब्लिक स्कूलों और आर्यसमाज के इन शिक्षणालयों में मौलिक भेद यह है, कि इनमें बच्चों को अपने धर्म का भी बोध कराया जाता है, उन्हें नैतिक शिक्षा दी जाती है और उनके सम्मुख उच्च आदर्श प्रस्तुत करने के प्रयत्न किये जाते है। आर्यसमाज के ये स्कूल 'पब्लिक स्कूलों' की तुलना में क्रिश्चियन मिशनरियों द्वारा स्थापित कॉन्वेण्ट स्कूलों से अधिक मिलते हैं, यद्यपि उनका वातावरण क्रिश्चिन न होकर आर्यसमाजी होता है। इन आर्य व दयानन्द मॉडल स्कूलों में सहशिक्षा को अपनाया गया है और बालक एवं बालिकाएँ उनमें प्रायः एक साथ पढ़ते है। सहशिक्षा महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित शिक्षा–विषयक मान्वतव्यों के विरूद्ध है। विदेशी भाषा को शिक्षा के माध्यम के रूप में प्रयुक्त करना और एक विदेशी भाषा की पढ़ाई पर अत्यधिक जोर देना भी महर्षि के मन्तव्यों के अनुरूप नहीं है। पर जिस प्रकार की शिक्षा की माँग हो, उसकी उपेक्षा करना भी आर्य समाज के अनेक विचारकों के मत में वांछनीय नहीं है। सम्पन्न एवं मध्य वर्गो के लो जिस ढंग से शिक्षणालयों में अपने बच्चों को पढ़ाना चाहते है, उनमें मुख्यतया पाश्चात्य व क्रिश्चियन वातावरण है। यदि आर्यसमाज द्वारा मॉडल स्कूल न खोले जाते, तो आर्य परिवारों के बच्चों भी क्रिश्चियन वातावरण वाले स्कूलों में प्रविष्ट होकर अपने धर्म व संस्कृति से विमुख होने लगतै। आर्य व दयानन्द मॉडल स्कूलों के कारण अब यह सम्भव हो गया है कि बच्चे वैदिक धर्म व आर्यसमाज के वातावरण में उस प्रकार की शिक्षा प्राप्त कर सकें, समय और परिस्थितियों के कारण जिसकी बहुत माँग है। [16]

उपदेशक विद्यालय

उपदेशक–विद्यालय–सामान्य शिक्षा के लिए आर्यसमाज द्वारा बहुत से स्कूल और कॉलेज स्थापित किये गये है। पर साथ ही अनेक ऐसी शिक्षण–संस्थाएँ भी आर्यसमाज ने खोली है, जिनका उद्देश्य वैदिक धर्म के प्रचार के लिए उपदेशक तथा आर्यसमाज के लिए पुरोहित तैयार करना है। आर्यसमाज में किसी को जन्म के आधर पर ब्राह्मण नहीं माना जाता।

इसलिए वहाँ पुरोहित एवं पुजारी के पद भी वंशक्रमानुगत व जन्म पर आधारित नहीं है। इन पदों को वही व्यक्ति प्राप्त कर सकते है, जो वेदशास्त्रों के ज्ञाता हों, यज्ञों के अनुष्ठान तथा संस्कार आदि कराने में जो निपुण हो और साथ ही जो सदाचारी भी हों। गुरूकुलों से भी यह आशा की जाती थी कि उनके स्नातक आर्यसमाज की इस आवश्यकता को पूर्ण कर सकेंगे। इसमें सन्देह नहीं कि गुरूकुल काँगड़ी, गुरूकुल वृन्दावन गुरूकुल महाविद्यालय ज्वालापुर आदि में शिक्षा प्राप्त कर अनेक ऐसे स्नातक कार्यक्षेत्र में आये, जिन्होंने वैदिक धर्म के प्रचार में अच्छी ख्याति प्राप्त की। अने सुयोग्य पुरोहित भी गुरूकुलों से आर्यसमाज को प्राप्त हुए। पर गुरूकुलों के पाठ्यक्रमों का निर्धरण इस दृष्टि से नहीं किया जाता था। उनमें वेद आदि शास्त्र पढ़ाये जाते थे। [17]

इसलिए नही कि शिक्षा प्राप्त कर विद्यार्थी पौरोहित्य का कार्य सुचारू रूप से कर सकेंगे और विधर्मियों से शास्त्रार्थ आदि कर वैदिक धर्म का विशेष रूप से प्रचार करेंगे। अतः यह आवश्यकता अनुभव की गई कि उपदेशक और पुरोहित तैयार करने के लिए पृथक् विद्यालय स्थापित किये जाएँ।

उसी के साथ लाहौर से ही उपदेशक महाविद्यालय' की शुरूआत हुई, उसका नाम 'दयानन्द उपदेशक महाविद्यालय' रखा गया था। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए आगरा में 'आर्य मसाफिर विद्यालय' की स्थापना हुई तथा बाद में हरियाणा राज्य के हिसार में 'दयानन्द ब्रह्म विद्यालय' की भी स्थापना हुई जो आज भी सुचारू रूप से कार्य कर रहा है। उसी श्रेणी में गुरूकुल घटकेश्वर में तथा शोलापुर महाराष्ट्र में उपदेशक महाविद्यालय' की स्थापना की गई थी। जहाँ गुरूकुलों में पढ़े हुए ब्रह्मचारी वेदों के प्रकाण्ड विद्वान् बनकर निकलते थे, वहीं उपदेशक विद्यालयों में ज्ञानार्जन करके उपदेशक, प्रसार, वक्ता, पुरोहित, विद्वान् बनकर निकलते रहे।

निष्कर्ष

इस तरह हम कह सकते है कि आर्यसमाज के द्वारा गुरूकुल परम्परा का पुनः उद्धार किया गया। इसके लक्ष्य इतने व्यापक थे कि वे परमाणु से लेकर परमेश्वर पर्यत्न समस्त विद्याओं को देकर छात्रों का बहुमुखी विकास करने में सक्षम थे। गुरू शिष्य परम्परा पुनः स्थापित हुई, जिसने भारतीय संस्कृति एवं शिक्षा के क्षेत्र में मील का पत्थर बनाया। गुरूकुल कागड़ी सही अर्थो में आधुनिकता और प्राचीनता का संगम बना। इसमें भारतीय संस्कृति और सभ्यता के उत्थान में अपना बहुमूल्य योगदान दिया। आर्यसमाज द्वारा गुरूकुल के साथ ही धार्मिक प्रचार के लिए उपदेशक विद्यालय की स्थापना करना अपने आप में एक नया कदम था। जो ईसाई मिशनरियों के द्वारा पादरियों के निर्माण की तरह उपदेशकों का निर्माण कर रहा था। आर्यसमाज में भारत और विदेशों में भी समान्य शिक्षा के लिए जो विद्यालय खोले वे भी भारतीय ज्ञान परम्परा में अपनी अमीट छाप रखते हैं। आज भी आर्यसमाज के गुरूकुल और विद्यालय अपनी महान परम्परा को बनाये हुए हैं और आधुनिक युग में भी अपनी प्रासंगिकता को साबित किये हैं।

संदर्भ सूचि

1. स्वामी दयानन्द सरस्वती, ''सत्यार्थ प्रकाश'', आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली 2012, पृ.
2. उपर्युक्त, पृ.
3. उपर्युक्त, पृ.
4. दीनानाथ सिद्धान्तालंकार, ''आर्यसमाज की उपलब्धियाँ'', सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली–1975, पृ. 238
5. सत्यकेतु विद्याालंकार, ''आर्यसमाज का इतिहास, भाग–3'', आर्य स्वाध्याय केन्द्र नई दिल्ली–पृ. 181
6. दीनानाथ सिद्धान्तालंकार, पूर्वोक्त पृ0 238–239
7. सत्यकेतु विद्याालंकार, पूर्वोक्त, पृ0 183
8. उपर्युक्त, पृ0 183
9. उपर्युक्त, पृ0 194
10. विनोदचन्द्र विद्यालंकार, ''स्वामी श्रद्धानन्द एक विलक्षण व्यक्तित्त्व'', घुडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास, हिण्डौन सिटी, राजस्थान, 2008, पृ0 49
11. सत्यकेतु विद्यालंकार, पूर्वोक्त पृ0 199
12. उपर्युक्त, पृ. 203

13. उपर्युक्त, पृ. 203
14. उपर्युक्त, पृ. 121
15. पूर्वोक्त
16. सत्यकेतु विद्यालंकार, पूर्वोक्त, पृ. 120
17. उपर्युक्त, पृ. 119
18. उपर्युक्त, पृ. 117